
इकाई 12 आधुनिक भारतीय अनुवाद परंपरा

इकाई की रूपरेखा

- 12.0 उद्देश्य
- 12.1 प्रस्तावना
- 12.2 उपनिवेशकालीन भारतीय अनुवाद की परंपरा
- 12.3 उपनिवेशकालीन भारतीय अनुवाद की परंपरा का राष्ट्रवादी स्वरूप
- 12.4 संस्कृत ग्रंथों के हिंदी अनुवाद
- 12.5 अरबी ग्रंथों के भारतीय भाषाओं में अनुवाद
- 12.6 फारसी भाषा के दस्तावेजों का भारतीय भाषाओं में अनुवाद
- 12.7 भारत में अनुवाद की परंपरा एवं विस्तृत उपयोग
- 12.8 स्वातंत्र्योत्तर भारत में अनुवाद की स्थिति
- 12.9 ज्ञान फलक का विस्तार और अनुवाद
- 12.10 आधुनिक काल में अनुवाद का विस्तार
- 12.11 सारांश
- 12.12 अभ्यास के लिए प्रश्न
- 12.13 उपयोगी पुस्तकें

12.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के बाद आप जान सकेंगे :

- अनुवाद की भारतीय आधुनिक परंपरा से क्या तात्पर्य है,
- अनुवाद की भारतीय आधुनिक परंपरा मूलतः उपनिवेशकालीन है,
- उपनिवेशकालीन भारतीय अनुवाद का राष्ट्रवादी स्वरूप क्या है,
- आधुनिककाल में अनुवाद किस प्रकार ज्ञान के फलक को विस्तृत करने में सहायक हुआ।

12.1 प्रस्तावना

इकाई 11 में आपने अनुवाद की भारतीय परंपरा का अध्ययन करते हुए प्राचीन एवं मध्यकालीन भारत की अनुवाद परंपरा तथा अनुवाद संबंधी गतिविधियों का अध्ययन किया। इस संदर्भ में आपने यह भी जाना कि प्राचीन काल में भारत की एक समृद्ध अनुवाद परंपरा थी। पूरे समाज को एक सूत्र में बाँधने तथा विभिन्न धर्मों एवं संस्कृतियों के बीच सोहार्द स्थापित करने में अनुवाद ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। मध्यकाल में मुगल शासन के दौरान अनुवाद की एक बेहद समृद्ध और स्वस्थ परिपाटी देखने को मिलती है। संस्कृत से अरबी और फारसी तथा अरबी व फारसी से विभिन्न भारतीय भाषाओं में प्रचुर मात्रा में अनुवाद हुए। आधुनिक भारतीय भाषाओं के उद्भव में भी अनुवाद की महत्वपूर्ण भूमिका है।

प्रस्तुत इकाई में हम जानने का प्रयास करेंगे कि अनुवाद की आधुनिक भारतीय परंपरा का क्या योगदान है। यह आधुनिककालीन परंपरा किस प्रकार मुख्यतः उपनिवेशकालीन परंपरा है जिसमें औपनिवेशिक ताकतों ने विभिन्न उद्देश्यों से प्रचुर मात्रा में भारतीय साहित्य का अनुवाद करवाया। इन अनुवादों के माध्यम से वे किस प्रकार अपने औपनिवेशिक उद्देश्य पूरे कर रहे थे।

12.2 उपनिवेशकालीन भारतीय अनुवाद की परंपरा

अंग्रेजी शासन के दौरान भारत में हुए अनुवाद कार्य का अवलोकन रोचक है। भारत के उपनिवेशीकरण के अभियान में अनुवाद-कार्य पर बरती गई अंग्रेजों की सावधान सक्रियता विशेष रूप से विवेचनीय है। उनके अनुवाद-उद्यम का उद्देश्य अपवित्र था, वे हमारे साहित्य, संस्कृति, और रीति-रिवाज, आहार-व्यवहार, उत्सव-आचार की बारीकियों को जानकर हम पर शासन करने का सहज रास्ता तलाश रहे थे। अनुवाद-कार्य का उनका अपना सत्ता संरक्षण और अनुवाद की उनकी अपनी बहुआयामी नीतियाँ (अलग और लक्ष्य-केंद्रित) थीं। पर उस दौरान राष्ट्र-प्रेम की भावना से भरे हमारे भारतीय मनीषियों ने बड़े ही महत्त्वपूर्ण अनुवाद किए। इन दोनों पक्षों के अनुवादों की वस्तुनिष्ठता में बुनियादी फर्क था। एक तरफ अंग्रेज हमारी विरासत का विरूपित चेहरा दिखा कर हमें बरगला रहे थे; दूसरी तरफ हमारे चिंतक हमें अपनी भव्यता समझाकर हमारा मनोबल बढ़ाने की व्यवस्था में लगे थे। स्वाधीनता आंदोलन के समय राष्ट्रीय अस्मिता की तलाश के प्रयास और उसके विकास के लिए देशी भाषाओं में हुए उन अनुवादों के महत्त्व का विवेचन आज भी ठीक से नहीं हो पाया है।

उस दौरान देशी भाषाओं में प्रायः तीन तरह के अनुवाद हुए :

1. अंग्रेजी ग्रंथों का विभिन्न भारतीय भाषाओं में अनुवाद
 2. संस्कृत के ग्रंथों का आधुनिक भारतीय भाषाओं में अनुवाद
 3. आधुनिक भारतीय भाषाओं की रचनाओं का परस्पर अनुवाद
- हिंदी में इन तीनों तरह के अनुवादों के कार्य बड़े पैमाने पर हुए।

भारत में स्वाधीनता आंदोलन के दौरान राष्ट्र की कल्पना और धारणा के विकास में अनुवाद की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है।

गौरतलब है कि आत्मसातीकरण की प्रक्रिया लगभग हर अनुवाद में काम करती है। औपनिवेशिक अनुवाद ने भारतीय समाज, कानून, इतिहास, संस्कृति, साहित्य, परंपरा और चेतना को आत्मसात करने का यत्न बड़े पैमाने पर किया, और वह अनुवाद उपनिवेशवादियों की धारणाओं से प्रेरित होकर हमारी अस्मिता का विरूपित चेहरा पेश कर रहा था। दुखद है कि अधिकांश भारतीय शिक्षित लोग उन अनूदित पाठों को भारतीय कानून, दर्शन और साहित्य आदि के ज्ञान का मूल स्रोत मानने लगे। यहाँ तक कि वे उन पाठों के माध्यम से भारत, भारतीयता, भारतीय समाज, संस्कृति और इतिहास संबंधी विचार-विमर्श तथा आख्यान को प्रामाणिक मान रहे थे। वे अनुवादकों की दृष्टि, पद्धति और पाठों को स्वाभाविक समझ रहे थे। अठारहवीं-उन्नीसवीं सदियों में भारतविदों द्वारा भारतीय पाठों के अंग्रेजी तथा अन्य यूरोपीय भाषाओं में जो अनुवाद हुए, वे उन उपनिवेशवादियों के सत्ता संरक्षण के प्रयास थे। इस प्रक्रिया से निर्मित हुई भारत की पहचान, छवि या अस्मिता एक प्रकार से अनूदित अस्मिता थी। वह एकांतिक और अनुकरणपरक भी थी और उससे निकला राष्ट्रवाद भी वैसा ही था।

12.3 उपनिवेशकालीन भारतीय अनुवाद की परंपरा का राष्ट्रवादी स्वरूप

भारतीय नवजागरण की चेतना के निर्माण और प्रसार में, विभिन्न जातीयताओं के बीच संबंधों के विकास और एक अखिल भारतीय दृष्टि के उभार में अनुवाद के योगदान का अभी ठीक से अध्ययन और मूल्यांकन नहीं हुआ है।

तथ्य है कि भारतीय नवजागरण और हिंदी नवजागरण के अधिकांश निर्माता महत्त्वपूर्ण अनुवादक भी थे। हिंदी नवजागरण के लेखक भारतेन्दु हरिश्चंद्र, महावीर प्रसाद द्विवेदी और रामचंद्र शुक्ल के अनुवाद विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण हैं।

उपनिवेशवादियों ने अनुवाद को भारतीय परंपरा और मानस पर कब्जा करने का साधन बनाया था। जब कि भारतीय नवजागरण के विचारकों ने अनुवाद को अपनी परंपरा की मुक्ति और स्वत्व की पहचान का माध्यम बनाया। भारतीय लेखक अनुवाद को औपनिवेशिक प्रभावों के विरुद्ध प्रतिरोध के साधन के रूप में विकसित कर रहे थे। वे आधुनिक चिंतन और ज्ञान-विज्ञान से भारतीय समाज को परिचित कराने के लिए भी अनुवाद का काम कर रहे थे। भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने संस्कृत के पाँच, बांग्ला के एक और अंग्रेजी के एक नाटक का अनुवाद किया था। महावीर प्रसाद द्विवेदी ने जान स्टुअर्ट मिल की पुस्तक 'लिबर्टी' का 'स्वाधीनता' नाम से अनुवाद किया था, जिसका पहला संस्करण सन् 1907 में, दूसरा 1912 में और तीसरा संस्करण सन् 1921 में छपा। रामचंद्र शुक्ल के अनुवादों में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है जर्मन वैज्ञानिक अंस्ट्रैट्स हैकल की पुस्तक 'रिडिल ऑफ यूनीवर्स' का 'विश्व प्रपंच' नाम से अनुवाद। मुंशी प्रेमचंद ने भी अनुवाद के क्षेत्र में महान कार्य किए हैं।

तथ्य है कि हिंदी नवजागरण के दौरान हिंदी में सबसे अधिक अनुवाद, रचनात्मक साहित्य और राजनीतिक-सामाजिक चिंतन की पुस्तकों का बांग्ला से हुआ। उल्लेखनीय है कि स्वत्व की पहचान के लिए अन्य की समझ भी आवश्यक है, न केवल 'स्व' और 'पर' के द्वैत अथवा अंतर के रूप में, बल्कि द्वंद्वत्मक रूप में भी। इस दृष्टि से सखाराम गणेश देउस्कर की पुस्तक 'देशेर कथा' के हिंदी अनुवाद का विशेष महत्त्व है। इसमें भारत की पराधीनता के यथार्थ की जटिल समग्रता और स्वाधीनता की अदम्य आकांक्षा की अभिव्यक्ति है। हिंदी पाठकों के बीच इस पुस्तक के अनुवाद और प्रसार ने स्वदेशी भावना जगाने और राष्ट्रीय चेतना को व्यापक बनाने में अनुपम भूमिका निभाई। उपनिवेश काल में तो यूरोपीय तथा भारतीय भाषाओं (विशेषकर संस्कृत) के बीच अनुवाद की लहर-सी चल पड़ी थी।

आदान-प्रदान का यह सिलसिला एक तरफ जर्मन, फ्रेंच, इटैलियन, स्पैनिश तथा भारतीय भाषाओं के बीच चल रहा था, तो दूसरी तरफ अंग्रेजी में अनुवाद की होड़ लगी थी। चूँकि औपनिवेशिक अधिकारी अंग्रेजी भाषा का प्रयोग करते थे, इसलिए आधिपत्यिक अस्तित्व के कारण अंग्रेजी को विशेषाधिकार युक्त समझा जाता था।

विलियम जॉस द्वारा कालिदास के *अभिज्ञानशाकुंतलम्* के अनुवाद के साथ अंग्रेजी अनुवाद का ब्रिटिशकाल चरमोत्कर्ष पर पहुँचा। एक पाठ के रूप में *अभिज्ञानशाकुंतलम्* अब भारत की सांस्कृतिक प्रतिष्ठा का प्रतीक और भारतीय चेतना में एक उत्कृष्ट पाठ बन चुका है। उन्नीसवीं शताब्दी में दसाधिक भारतीय भाषाओं में इसके अनुवाद का तर्क इसी से पुष्ट होता है। प्राच्यविद् विचारधारा द्वारा एवं भारत को समझने,

परिभाषित करने, श्रेणीबद्ध करने तथा नियंत्रित करने हेतु अनुवाद की जरूरत से औपनिवेशिक अधिपति परिचित हो चुके थे, इसलिए वे कृतसंकल्प भी थे। अतः उन्होंने भारत का एक पृथक और अपनी पसंद का विवरण तैयार किया।

जबकि भारतीय अनुवादकों ने अंग्रेजी में अनुवाद करने वाले पाठों का विस्तार करने, सुधारने, संशोधन करने का प्रयास किया; कभी-कभी ब्रिटिश व्याख्या को चुनौती भी दी, हालाँकि पूरा विवाद समकालीन पाठों की बजाय प्राचीन पाठों पर ही आधारित होता था।

भारतीय विद्वानों द्वारा भारतीय मूल-पाठों के अंग्रेजी अनुवाद के क्षेत्र में राजा राममोहन राय द्वारा अनूदित शंकर का वेदांत, केन और ईशावास्योपनिषद् पहला भारतीय हस्तक्षेप था। इसके बाद आर.सी. दत्त ने ऋग्वेद, उपनिषदों, रामायण, महाभारत और कुछ शास्त्रीय संस्कृत नाटकों का अनुवाद किया।

कहा जा सकता है कि इन अनुवादों ने स्वच्छंदतावादी और उपयोगितावादी विचारधारा से प्रभावित उस धारणा का खंडन किया, जिससे भारतीय नागरिकों को सुसुप्त मनोदशा का व्यक्ति माना जाता था। उसके बाद तो फिर अनुवाद के क्षेत्र में गति आ गई। दीनबंधु मित्र, अरबिंद, रवींद्र नाथ टैगोर आदि ने यथेष्ट अनुवाद किए। इसी दौरान भारतीय भाषाओं में परस्पर अनुवाद भी शुरू हुआ। पर सच्चाई है कि आज भी भारत में अधिसंख्य शिक्षित लोगों की पहुँच से अंग्रेजी बाहर है, इन वर्गों का वास्तविक सशक्तिकरण केवल महत्त्वपूर्ण साहित्यिक और ज्ञान आधारित पाठों के भारतीय भाषाओं में अनुवाद के माध्यम से ही संभव है।

12.4 संस्कृत ग्रंथों के हिंदी अनुवाद

हिंदी का आधुनिक काल अनुवाद की दृष्टि से अत्यधिक संपन्न काल रहा है। प्राचीन संस्कृत रचनाओं के अनुवाद भारतेंदु से पहले ही शुरू हो गए थे। भारतेंदु युग और उसके बाद तो यह क्रम बड़े सिलसिलेवाद ढंग से चला। राजा लक्ष्मण सिंह द्वारा 'अभिज्ञान शाकुंतलम्' का 'शकुंतला नाटक' नाम से अनुवाद तो अत्यधिक लोकप्रिय हुआ। अन्य अनुवादों में भारतेंदु द्वारा विशाखादत्त के 'मुद्राराक्षस' का, लाला सीताराम द्वारा 'मेघदूत', 'मृच्छकटिक', 'उत्तररामचरित', 'मालती माधव' का, बालकुंद गुप्त द्वारा 'रत्नावली' का, पं. सत्य नारायण कवरत्न द्वारा 'उत्तररामचरित' और 'मालतीमाधव' का अनुवाद विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। कुछ रचनाओं के अनुवाद तो बार-बार होते रहे। इनमें 'श्रीमद्भागवत गीता', और 'अभिज्ञानशाकुंतलम्' का नाम विशेष रूप से लिया जा सकता है।

अभिज्ञानशाकुंतलम् के एक श्लोक के अंग्रेजी अनुवाद कुछ उदाहरण हम पीछे दे चुके हैं यहाँ भी उसी के हिंदी अनुवाद के कुछ उदाहरण दिए जा रहे हैं।

| | |
|-------------------|---|
| कालिदास | यास्यत्यद्य शकुन्तलेति हृदयं संस्पृष्टमुत्कण्ठया कण्ठः स्तम्भितवाष्पवृत्तिकलुषाश्चिन्ताजडं दर्शनम्। वैक्लव्यं मम तावदीदृशमिदं स्नेहादरण्यौकसः पीड्यन्ते गृहिणः कथं नु तनयाविश्लेदुः खैर्नवैः ॥ (4.6) |
| राजा लक्ष्मण सिंह | आज शकुंतला जाएगी मन मेरो अकुलात, रुकि आँसू गदगद गिरा, आँखिन कछु न लखात। |

मो—से बनबासीन जो इतौ सतावत मोह,
तो गेही कैसे सहें दुहिता प्रथम — बिछोह ।।
महादेवी वर्मा आज विदा होगी शकुंतला सोच हृदय आता है भर—भर,
दृष्टि हुई धुंधली चिंता से, रुद्ध अश्रु से कंठ रुद्ध—स्वर ।
जब ममता से इतना विचलित व्यथित हुआ वनवासी का मन,
तब दुहित विछोह नतन से, पाते कितनी व्यथा गृहीजन!
(सत्पपर्णा, पृष्ठ 196)

12.5 अरबी ग्रंथों के भारतीय भाषाओं में अनुवाद

वर्तमान समय में भारतीय नागरिकों के अरब जगत से संबंध ने भी इस प्रवृत्ति को गति दी है। परिणामस्वरूप अरबी साहित्य और इस्लामिक विज्ञानों की विभिन्न शाखाओं पर विचार करने वाली विविध पुस्तकों और लेखों का विभिन्न भारतीय भाषाओं में अनुवाद हुआ है। अरबी पुस्तकों एवं आलेखों के ऐसे अनूदित संस्करणों से ताहा हुसैन, नजीब महफुज और तौफीक अल—हाकर जैसे अरब लेखकों को भारत के साहित्यिक समाज में अत्यधिक लोकप्रियता हासिल हुई है। यहाँ ताहा हुसैन के 'फी—अल—शेर—जहाली' का विशेष रूप से उल्लेख किया जाना चाहिए, क्योंकि इसने भारत में अरबी जानने वाले लगभग प्रत्येक व्यक्ति का ध्यान आकर्षित किया। इसकी विषयवस्तु बहुत विवादास्पद थी। परिणामस्वरूप, भारत के अनेक अरबी विद्वानों ने इसका अनुवाद किया। उर्दू में इसका अनुवाद मुफ्ती रजा फरंगी माहली ने किया। उनका अनुवाद सरल और स्पष्ट है और इस तथ्य को प्रदर्शित करता है कि उनका अरबी एवं उर्दू दोनों ही भाषाओं पर पूर्ण अधिकार है। एक और आधुनिक अरबी लेखक, जिनके लेखन का भारतीय भाषाओं में अनुवाद हुआ है, वह है मिस्र के प्रसिद्ध रचनाकार तौफीक—अल—हाकिम। उनके अनेक नाटक उर्दू व अन्य भारतीय भाषाओं में अनूदित हो चुके हैं, उनका प्रसिद्ध नाटक 'मोहम्मद' का उर्दू अनुवाद बहुत पहले प्रोफेसर अतिया खलील अरब ने किया था। इस नाटक में पैगम्बर मुहम्मद के जीवन को प्रभावशाली ढंग से दर्शाया गया है। उनके अन्य नाटक 'सुलैरनान—अल—हाकिम शहरजाद और अहल—उल—कहाफ' भी उर्दू में अनूदित हो चुके हैं। इन तीनों में से 'अहल—उल—कहाफ' ने पाठकों के मन पर दीर्घगामी प्रभाव डाला। इस नाटक की विशेषता है कि इसमें हमारे जीवन के सैद्धांतिक और दार्शनिक पक्षों पर विचार किया गया है। इस नाटक के अनुवादक ने इस बात का विशेष ध्यान रखा, बहुत सरल, सहज, बोधगम्य और रोचक शैली में इसका अनुवाद किया। एक 'यमनी' नाटक 'अल—रहिना' का 'बंधक' शीर्षक से बहुत पहले हिंदी में अनुवाद हुआ था। इस प्रकार की अकादेमिक गतिविधियों ने अंतर्राष्ट्रीय व्यापार तथा संपर्क साधने वाले यंत्रों के बढ़ते प्रयोग के कारण गति पाई है। अब, बहुराष्ट्रीय व्यापार कंपनियों को अनुवादकों और दुभाषियों की अधिक आवश्यकता है क्योंकि वे अपने विदेशी प्रतिस्थानियों की भाषा को सीखे बिना अपना व्यापार नहीं चला सकते।

इस उद्देश्य के लिए कंपनियाँ कभी स्थायी और कभी अस्थायी अनुवादकों व दुभाषियों की नियुक्ति करती हैं। इस प्रवृत्ति ने व्यावसायिक अनुवादक की प्रथा को जन्म दिया। ये पेशेवर अनुवादक सामान्यतः कार्यालयी और तकनीकी कागजात का अनुवाद करते हैं। चूँकि ये दस्तावेज़ विशिष्ट शब्दावली से परिपूर्ण होते हैं जो सामान्यतः प्रयोग किए जाने वाले शब्दकोशों में नहीं मिलती, इसलिए विशिष्ट पारिभाषिक शब्दावलियों की

बड़ी माँग हैं। विश्वविद्यालयों और कॉलेजों में अरबी कोर्स करने वाले छात्र-छात्राओं का उद्देश्य द्विभाषी अनुवादक बनना होता है। अपनी औपचारिक शिक्षा समाप्त करने के बाद वे विदेशी व्यापार में संलग्न वाणिज्यिक संस्थानों में कार्य करने को प्राथमिकता देते हैं। ऐसे अनुवादकों को प्रायः अरब देश विशेषकर दुबई व अन्य खाड़ी देशों में जाने का अवसर मिलता है जो वर्तमान समय में पूरे पश्चिमी एशियाई क्षेत्र में वाणिज्यिक गतिविधियों का केंद्र माना जाता है। मध्य पूर्व के देशों में अपने प्रवास के दौरान वे बहुधा अरब लोगों के साहित्यिक व सामाजिक विकास से रू-ब-रू होते हैं। कभी-कभी किसी अरबी लघुकथा या गद्य से प्रभावित होने पर वे उसे अपनी संबंधित भाषा में अनुवाद करते हैं।

ऐसे अनूदित कार्यों के द्वारा ही भारतीय साहित्यकार ये जान पाते हैं कि वर्तमान अरब लोग अपने पारंपरिक ज्ञान तक ही सीमित नहीं हैं। यदि ये अनूदित रचनाएँ नहीं होतीं तो पड़ोसी अरब देशों के बारे में हमारा ज्ञान बहुत सीमित और अल्प होता।

12.6 फारसी भाषा के दस्तावेजों का भारतीय भाषाओं में अनुवाद

विश्व की लगभग सभी प्रमुख भाषाओं में उमर खय्याम की रुबाइयों के अनुवाद हो चुके हैं। जर्मन, रशियन, अफ्रिकन, इटैलियन, डच, थाई, अल्बेनियन इनमें प्रमुख भाषाएँ हैं। उन रुबाइयों का अनुवाद अनेक भारतीय भाषाओं में भी हुआ। बांग्लादेश के राष्ट्र कवि काजी नजरुल इस्लाम ने सन् 1958 में उन रुबाइयों का बंगला में अनुवाद किया। उल्लेखनीय है कि जिस तरह नजरुल की गेय रचनाएँ *नजरुल-गीतिका* नाम से, रवींद्रनाथ टैगोर की रचनाएँ *रवींद्र-संगीत* नाम से गाई जाती हैं, उसी तरह नजरुल ने उमर खय्याम की रुबाइयों को *ओमर खैय्याम गीति* शीर्षक से रखा। सन् 1942 में मुहम्मद शहीदुल्लाह ने बंगला में इसका अनुवाद *रुबाइयत-ए-ओमार खैय्याम* शीर्षक से किया। जफर सिकंदर अबू ने सन् 1966 में इसका बंगला अनुवाद *ओमार खैय्याम* शीर्षक से किया। इस तरह बंगला में इसके अनेक अनुवाद हुए जिनमें कांति घोष, नरेंद्र देव और शक्ति चट्टोपाध्याय के नाम प्रमुख हैं।

प्रसिद्ध पुस्तक *एक योगी की आत्मकथा* के लेखक परमहंस योगानंद ने अपनी *वाइन ऑफ द मिस्टिक* शीर्षक पुस्तक में खय्याम की रुबाइयों के आध्यात्मिक पक्ष को समझाया है। लगभग छह दशक पहले लिखी गई वह पुस्तक इधर आकर *रुबाइयत ऑफ उमर खय्याम एक्सप्लेंड* शीर्षक से फिर प्रकाशित हुई है।

पंडित नारायण दास (पूरा नाम *पंडित अज्जदा अदिभतला नारायण दास*) हिंदी, तेलुगु, संस्कृत, फ़ारसी समेत नौ भाषाओं के ज्ञाता थे। वे उमर खय्याम के बहुत बड़े प्रशंसक थे। उनका मत था कि फिट्जराल्ड के अनुवाद में उमर की रुबाइयों के साथ पूरा न्याय नहीं हुआ है, इसे प्रमाणित करने के लिए उन्होंने संस्कृत और तेलुगु में उन रुबाइयों का अनुवाद किया। सन् 1932 में प्रकाशित यह अनुवाद उस समय का बहुत बड़ा साहित्यिक योगदान माना गया।

अन्य भाषाओं की तरह हिंदी में भी रुबाइयों के कई अनुवाद हुए। कुछ अनुवाद तो हिंदी के सुविख्यात कवि हरिवंश राय बच्चन की प्रसिद्ध कृति *मधुशाला* (सन् 1935) के प्रकाशन से पहले के हैं और कुछ बाद के भी। कहते हैं कि *मधुशाला* की रचना का प्रेरणा-स्रोत उमर खय्याम की रुबाइयाँ ही हैं। चर्चा है कि इन रुबाइयों का हिंदी में

पहला अनुवाद संभवतः पंडित सूर्यनाथ तकरू ने किया। पंडित गिरिधर शर्मा नवरत्न ने इन रुबाइयों का हिंदी अनुवाद सन् 1931 में किया, जो नवरत्न-सरस्वती भवन, झालरापाटन से प्रकाशित हुआ। सन् 1933 में उन्होंने संस्कृत अनुवाद भी किया, संस्कृत संस्करण का प्रकाशन उसी वर्ष हुआ।

सन् 1931 में उमर खय्याम की रुबाइयों का अनुवाद राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने किया, कानपुर के प्रकाश पुस्तकालय द्वारा *रुबाइयात उमर खय्याम* शीर्षक से वह पुस्तक प्रकाशित हुई। फिलहाल यह पुस्तक अनुपलब्ध है।

सन् 1932 के आसपास पंडित केशव प्रसाद पाठक द्वारा किया गया हिंदी अनुवाद इंडियन प्रेस लिमिटेड, जबलपुर से प्रकाशित हुआ। सन् 1932 में ही पंडित बलदेव प्रसाद मिश्र द्वारा किया गया अनुवाद मेहता पब्लिशिंग हाउस, सूत टोला, काशी से प्रकाशित हुआ, डॉ. गया प्रसाद गुप्त द्वारा किया गया अनुवाद सन् 1933 में हिंदी साहित्य भंडार, पटना से प्रकाशित हुआ।

पत्रकारिता किसी भी सामाजिक एवं राजनीतिक पहलुओं पर दूरगामी प्रभावी डालती है। मुगलों के भारत-आगमन के बाद पत्रकारिता का एक सुनहरा युग शुरू हुआ, फ़ारसी के उस दौर के अनेक अखबारों में प्रकाशित जिन आलेखों में सन् 1857 के विद्रोह से संबंधित जानकारी है, वे हमारे वर्तमान शोध एवं ज्ञानाकुल मानस को नई दिशा दे सकते हैं। दुखद है कि ढेर सारे बहुमूल्य समाचार-पत्र अभिलेखागारों, संग्रहालयों एवं पुस्तकालयों में दयनीय स्थिति में हैं, या कहें कि नष्टप्राय हैं, उनका अनुवाद और संरक्षण जरूरी है, कुछ प्रमुख समाचार-पत्र निम्नलिखित हैं :

मिरात-उल-अखबार, आइना-ए-इस्कौदी, जाम-ए-जहाँनुमा, शमसुल अखबार, बंगाल हेराल्ड, स्वराज इंदिरा, आगरा अखबार, ज़ब्दातुल अखबार, माह-ए-आलम अफरोज, लाहौर अखबार, लुधियाना अखबार, सुल्तान-उल-अखबार, मेहर मुनेर, अखबार-उल-कबीर, सेरेजुल अखबार, सादिक-अल-अखबार, एहसान-उल-अखबार, मारताउद अखबार, जगदीपक भास्कर, गुलशन-ए-नौ-बाहर, दूरबीन, उम्दातुल अखबार (मुम्बई और सूरत), अंजुमन-ए-पेशावर, शफीक, मुदारिस-ए-फ़ारसी, फ़ारसी अखबार, नग्मा-ए-हिंद, आजाद, सैयद-उल-अखबार, कैद-ए-फ़ारसी, इस्लाह, ईरान-ए-नौ, जहान-ए-आजाद, ताजमहल, आहंग, और ईरान-व-हिन्द।

इन समाचार-पत्रों एवं पत्रिकाओं के अनुवाद से हमारे देश की आर्थिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, सैनिक एवं राजनीतिक घटनाओं के प्रतिज्ञान में बड़ी उपलब्धि होगी, इन प्राथमिक स्रोतों से हम एक निष्पक्ष शोधकार्य को दिशा दे सकते हैं।

पलासी युद्ध (सन् 1757) से भारत के पहले स्वाधीनता संग्राम (सन् 1857) तक के एक सौ वर्षों की ऐतिहासिक, राजनीतिक, आर्थिक, सैनिक, साहित्यिक एवं सांस्कृतिक उपलब्धियों का ब्यौरा जिन दस्तावेजों में सुरक्षित है, वे यद्यपि दयनीय दशा में हैं, पर इनके संरक्षण एवं अनुवाद से हम इन सौ वर्षों के हर पहलू को बेहतर समझ सकते हैं। भारत के निम्नलिखित अभिलेखागारों एवं संग्रहालयों में ये दस्तावेज उपलब्ध हैं -

1. राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली
2. राष्ट्रीय अभिलेखागार, भोपाल
3. उत्तर प्रदेश राज्य अभिलेखागार, लखनऊ
4. उत्तर प्रदेश राज्य अभिलेखागार, इलाहाबाद

5. बिहार राज्य अभिलेखागार, पटना
6. मध्य प्रदेश राज्य अभिलेखागार, भोपाल
7. पंजाब राज्य अभिलेखागार, पटियाला
8. हरियाणा राज्य अभिलेखागार, चंडीगढ़
9. राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर
10. राष्ट्रीय पुस्तकालय, कोलकाता
11. जाकिर हुसैन पुस्तकालय, नई दिल्ली
12. सालारजंग संग्रहालय, हैदराबाद
13. दिल्ली राज्य अभिलेखागार, दिल्ली
14. आयुक्त कार्यालय, मेहरौली, दिल्ली
15. ख्वाजा हसन निजाम संग्रहालय, दिल्ली।
16. माल खानों के जिला मुख्यालयों—

अलीगढ़, इटावा, आगरा, बिजनौर, मुरादाबाद, मेरठ, लखनऊ, बुलंदशहर, एटा, मथुरा, बाराबंकी, सुल्तानपुर, आजमगढ़, बरेली, फर्रुखाबाद, झाँसी, गाजीपुर, मिर्जापुर, मुजफ्फरनगर, सहारनपुर, पटना, भागलपुर, कोलकता, इलाहाबाद, पानीपत, मेवात, सोनीपत, रोहतक, फरीदाबाद आदि।

17. खुदाबख्श ओरिएंटल पुस्तकालय, पटना।

12.7 भारत में अनुवाद की परंपरा एवं विस्तृत उपयोग

इन सब के बावजूद कभी किसी विद्वान ने भारत में अनुवाद सिद्धांत की कोई परंपरा विकसित नहीं की। इस कार्य को मुक्त रहने दिया। कभी अनुवाद संबंधी अपनी मान्यताओं को संस्थापित या आरोपित करने का काम नहीं किया।

यह ठीक भी था। भारत जैसे ज्ञानाकुल देश में ऐसा ही होना चाहिए था। बाद के दिनों में तो अनुवाद की आवश्यकता बहुआयामी हो गई। नई दुनिया की नई जरूरतों के मद्देनजर विराट भौगोलिक परिवेश और बहुभाषिक नागरिक जीवन के आपसी संवाद की अकूत आवश्यकता दिखने लगी। जीवन-यापन के मूल और महत्वपूर्ण कारण विस्तृत और विविध हो गए। पर अनुवाद की प्राथमिक आवश्यकता प्रारंभिक समय में व्यापार में संवाद और संप्रेषणीयता को लेकर ही दिख रही थी। भारत में धार्मिक सहिष्णुता प्रारंभ से रही है। दूसरे देश में जाकर बर्बरतापूर्ण लूटपाट करना, उन पर शासन करना, उन्हें अपमानित करना, हेय समझना...आदि वृत्ति यहाँ के नागरिकों का कभी लक्ष्य नहीं रहा; संभवतः यह कारण भी हो कि भारतीय नागरिक के अनुवाद का विमर्श प्रारंभ में मुख्यतः व्यापार और सामान्य संप्रेषण तक ही सीमित रहा, पर शीघ्र ही यह ज्ञान की शाखाओं में साहित्य एवं दर्शन की ओर आया और तेजी से आगे बढ़ता गया।

दूसरे विश्वयुद्ध के बाद तो अनुवाद कार्य के राजनीतिक उद्देश्य भी अत्यंत प्रमुख और प्रखर हो गए। वैचारिक आदान-प्रदान, राष्ट्रीय सीमा की संवेदनशीलता, वैश्विक मैत्री की संविदाओं के मामले इतने महत्वपूर्ण हो गए कि व्यापारिक संवाद-संप्रेषण और सामाजिक सौहार्द की सीमा पारकर अनुवाद कार्य की भूमिका अंतर्राष्ट्रीय

राजनीति को रेखांकित करने लगी। विश्वव्यापी सांस्कृतिक, राजनीतिक, व्यापारिक, शैक्षिक संबंध; पत्रकारिता, साहित्य, कला, विचार-विमर्श, दर्शन, धर्म, शिक्षा, विज्ञान एवं तकनीकी उपलब्धि आदि के क्षेत्र में अद्यतन होने के लिए अनुवाद का उपयोग महत्त्वपूर्ण हो गया।

12.8 स्वातंत्र्योत्तर भारत में अनुवाद की स्थिति

इधर विश्वग्राम की अवधारणा में तेजी आई। इसके सर्वांगीण विकास पर बल दिया जाने लगा। भारतीय संस्कृति के मूल में यह अवधारणा तो नीति के स्तर पर प्रारंभ से ही है, और भारत के नागरिक ऐसा मानते भी आए हैं। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' कहने वाले भारतीयों के लिए 'उदार चरितानांतु' की विशेषता बताई जाने लगी। भारतीय नागरिकों का यह 'उदार चरित' प्रारंभ से है। तभी तो यहाँ के नागरिकों ने बाहर से आए भिन्न-भिन्न संस्कृति के लोगों को न केवल स्वीकार किया, बल्कि उनकी संस्कृतियों और उनके रहन-सहन से अपने सम्मिलन का रास्ता तक अख्तियार कर लिया। इतिहास का अन्वेषण अथवा समाज-शास्त्रीय पद्धति की कसौटी पर भारतीय जीवन-मूल्य का अनुशीलन किया जाए तो इस बात का प्रमाण आसानी से मिल जाएगा।

विश्वग्राम की अवधारणा का मूल सूत्र अंतर्राष्ट्रीय सांस्कृतिक संबंध में ही दिखता है; और विश्व फलक पर संस्कृति की यह समझ एक मात्र अनुवाद के जरिए संभव है। इस बात को मानने में कतई कोई हिचक नहीं होनी चाहिए कि किसी व्यक्ति के एक कथन का किसी एक भाषा से दूसरी भाषा में अनुवाद करने का अर्थ केवल उस कथन का अनुवाद नहीं है। उसमें वस्तुतः यह जानने की लगातार चेष्टा होती है कि उस कथन का पाठ क्या है, उस पाठ की व्यंजना क्या है, व्यंजना का उद्देश्य क्या है, कथन की शैली क्या है (शालीन, आक्रामक, निवेदन, सलाह, धमकी, सम्मान्य, अभद्र... आदि), कथन की शब्दावली कैसी है, वाचक किस देश-काल-पात्र की पर्यवस्थिति में है, वाचक की वैयक्तिक-वैचारिक-मानसिक-पदेन हैसियत क्या है, कथन से वाचक और संबोध्य का संबंध क्या है...इन तमाम सवालों से जूझते हुए अनुवादक को अनुवाद करते समय सारी गुत्थियाँ सुलझानी पड़ती हैं। जब कभी हम अनुवाद करने बैठते हैं, केवल उस पाठ की भाषा नहीं बदलते, उस प्रसंग को दूसरी भाषा में देते हुए एक साथ कई बातों का ध्यान हमें रखना पड़ता है। शब्द-संस्कार, वाक्य संरचना, कथ्य का वातावरण, प्रसंग की संस्कृति, वाचक की सर्वांगीण पहचान से संचालित उसकी अभिव्यक्ति शैली...तमाम बातों के मद्देनजर लक्ष्य-भाषा से स्रोत-भाषा में किसी पाठ का भाषांतर करते समय सचेत रहना पड़ता है।

12.9 ज्ञान फलक का विस्तार और अनुवाद

उल्लेखनीय है कि प्रकाशन व्यवसाय ने उच्च कुलोद्भव लोगों के वर्चस्व से जैसे शिक्षा को मुक्त कराकर आम नागरिक में ज्ञान का अलख जगाया, अनुवाद वृत्ति ने वैसे ही ज्ञान की शाखाओं को उच्च शिक्षितों और बहुभाषाविदों के वर्चस्व से मुक्त किया। इतने बड़े संसार की बात तो दूर, अभी तक यह भी संभव नहीं हो पाया है कि भारत के लोग अपने देश की सभी भाषाओं में उपलब्ध सामग्री को पढ़ लिख सकें। भारत जैसे बहुभाषिक देश में तो यह दुष्कर ही लगता है। स्वाधीनता आंदोलन के दौर के कुछ बुद्धिजीवियों और उनके बाद की पीढ़ी के लोगों में तो थोड़ा बहुत बहुभाषिक ज्ञान था

भी, पर बाद के लोगों ने तो त्रिभाषा फॉर्मूला से ही काम चलाया। अपवादस्वरूप कुछ लोग अवश्य होंगे। पर हैरत की बात अभी भी है कि कन्नड़ से असमिया या मलयालम से ओड़िया आदि में सीधे अनुवाद करने वालों की अनुपलब्धता बनी हुई है। भारतीय भाषाओं के बीच परस्पर अनुवाद कार्य के लिए अभी भी अधिकांश स्थितियों में अंग्रेजी, या हिंदी को सेतुभाषा के रूप में उपयोग में लाया जाता है। इन परिस्थितियों में हिंदी भाषी क्षेत्र की जनता आज शिवराम कारंत, या अक्का महादेवी, या संत ज्ञानेश्वर, या तुकाराम, या यू. आर. अनंतमूर्ति, या फकीर मोहन सेनापति, या ऐसे किसी भी महान रचनाकार की रचनाओं के जरिए उस जनपद की संस्कृति से परिचित हो पाता है; या फिर फ्रांस, जर्मनी, ब्रिटेन, अमेरिका, अफ्रीका, जापान की कला, साहित्य, संस्कृति अथवा वैज्ञानिक-प्रौद्योगिक-राजनीतिक उपलब्धियों से परिचित हो पाता है, तो इसका श्रेय अनुवाद को ही जाता है। यहाँ तक कि परराष्ट्र अथवा प्रांतेतर भाषा-क्षेत्र के विभिन्न संकायों में जो कुछ महत्त्वपूर्ण होता है, और वहाँ के संचार माध्यमों में इसकी चर्चा होती है, तो उन खबरों की जानकारी भी विश्व फलक पर अनुवाद के माध्यम से ही पहुँचती है। इस अर्थ में खबरों का अनुवाद, खुद अनुवाद कार्य के लिए महत्त्वपूर्ण हो उठती है और अन्य भाषा क्षेत्र के लोग उन कृतियों के अनुवाद की ओर उन्मुख होते हैं। ज्ञान के क्षेत्र में लोकतंत्र की इस बहाली का श्रेय आज अनुवाद को ही जाता है कि कोई ऐसा नागरिक, जो रूसी या फ्रेंच या जर्मन नहीं जानता, यहाँ तक कि भली-भाँति अंग्रेजी भी नहीं जानता, पर वह आज मैक्सिम गोर्की, दोस्तोयवस्की, सिमोन द' बुआ, हावरमास, कामू, काफ़का, ग्राम्सी, गुंटर ग्रास, इलियट, गेटे की बात कर सकता है।

टीका से भावानुवाद और भावानुवाद से पूरे अनुवाद तक पहुँचे हुए हम लोगों के लिए यह कम खुशी की बात नहीं है कि आज हमारे यहाँ अनुवाद प्रक्रिया में भी काफी विकास हुआ है। एक तरह से पेशे के रूप में भी और मुहिम के रूप में भी इस दिशा में काफी लोग आगे आए हैं और काफी निष्ठा एवं प्रतिबद्धता से इस दिशा में काम कर रहे हैं। इस प्रक्रिया ने हमारे यहाँ आंदोलनात्मक रूप से कई उपलब्धियाँ हासिल की। मजे की बात यह है कि हर उपलब्धि ने इस दिशा में अनुवादकों के उत्साह को बढ़ाया और अनूदित साहित्य का महत्व बढ़ा है। साहित्य अकादेमी द्वारा अनुवाद कार्य पर पुरस्कार, जगह-जगह अनुवाद में डिप्लोमा पाठ्यक्रम, तुलनात्मक साहित्य पर शोध और विशेष अध्ययन. ये सारी घटनाएँ हमारी उपलब्धियाँ ही हैं।

इन सबके साथ, साहित्यिक आदान-प्रदान ने जो सबसे बड़ा काम किया, वह यह कि इसने भारतीय भाषाओं के साहित्य के तुलनात्मक अध्ययन को सुविधाजनक बनाया है, जिससे विभिन्न भाषा के वैचारिक साम्य को समझने की गुंजाइश सामने आई और राष्ट्र के एकीकरण में इन गतिविधियों ने अपना अहम् योगदान दिया है। हर भाषा का साहित्य अपने जनपद की समकालीन सभ्यता, आचार-विचार, रहन-सहन, संस्कृति, शिष्टाचार का वाहक होता है। अर्थात्, साहित्य अपने जनपद की लोक-सभ्यता का इतिहास होता है और उस भाषा के चिंतकों के आत्ममंथन का वाहक होता है। अनुवाद के माध्यम से हम थोड़े कम घनत्व और थोड़ी कम तीव्रता के साथ ही सही, पर वहाँ की लोक सभ्यता से परिचित होते हैं। यह परिचय न केवल वहाँ के बारे में हमारी जानकारी बढ़ाता है, बल्कि वहाँ की जनता से हमारी घनिष्ठता भी बढ़ाता है।

विभिन्न यूरोपीय देशों तथा कालांतर में ब्रिटेन द्वारा उपनिवेशित होने के कारण भारत को न केवल आर्थिक नुकसान हुआ अपितु ब्रिटिशराज के उपनिवेश बनकर भारत के सांस्कृतिक मनोबल को बहुत चोट पहुँची जिसके परिणाम केवल गुलामी के दौरान ही

नहीं अपितु स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी देखे गए। भारत मानसिक गुलामी का शिकार हो गया। नतीजा यह हुआ कि सैकड़ों वर्षों तक गुलामी की जंजीर में भी जिस भारत ने अपनी अस्मिता और अपनी संस्कृति सुरक्षित रखी, वह स्वाधीनता के पश्चात् खंडित होने लगी। पर धन्य कहें साहित्य को और साहित्यिक आदान-प्रदान को, जिसने हमारी एकता और अखंडता को आहत होने से बचाया। हम हिंदी में श्रीलाल शुक्ल की *रागदरबारी* की बात करें तो समाज की शिक्षा, संस्कृति, आदर्श, प्रतिमान, नीति, व्यवस्था सब पर पाखंड और रूढ़ि की विकृति का प्रभाव दिखता है, पुनत्तिल कुंजबुल्ला के मलयालम उपन्यास *मरन्नु* (दवा) में चिकित्सा की दुनिया की दुर्गंधियों का खुलासा दिखता है। तेलुगु में केसव रेड्डी के उपन्यास *उसने जंगल को जीता* में मानवीय शक्ति के आतंक के साथ संघर्ष और उसके विजय की गाथा अंकित है; तो तमिल में सु. समुत्तिरम के *ओरुकोटुकु वेलिए* (एक घरे से बाहर) में एक स्त्री मजदूर के संघर्ष और ज़मींदारों द्वारा उसके संघर्ष को लगातार कठोर बनाते जाने की दुष्कृति। पंजाबी में सोहन सिंह 'शीतल' के *तूतों वाला खूह* में विभाजन की त्रासदी है, तो मलयाडूर रामकृष्णन के मलयालम उपन्यास *यंत्र* में नौकरशाही की अंदरूनी दुनिया की गंदगी। इन सबके साथ हिंदी के *झूठा सच*, *आधा गाँव*, *मैला आँचल*, मैथिली के *पृथ्वी पुत्र*, मराठी के *कोसला*, गुजराती के *जीवन एक नाटक*, कन्नड़ के *मुक्ति*, *घटश्राद्ध*, बंगला के *सीप की कोख में मोती* या अन्यान्य भाषाओं के घनेरों उपन्यास, नाटक, कथा आदि का नाम लेकर सोचना शुरू करें, तो हमें कभी इनके पाठ के समय भाषायी विवाद और भाषायी विभिन्नता की बात ध्यान में नहीं आती। ऐसा लगता है कि हमारे पूरे मुल्क के साहित्यकार एक ही लक्ष्य पर केंद्रित दिखते हैं और हरेक के यहाँ पाखंड, विकृति, शोषण, व्यभिचार, अत्याचार पर जनशक्ति के विजय की कथा अंकित दिखती है और यही वह जादुई शक्ति है जो हमारे बीच संगम की सरस्वती नदी की तरह अंतःसलिला बह रही है और हमें हमारे मानवीय धर्म से अनुप्राणित किए हुए हैं।

12.10 आधुनिक काल में अनुवाद का विस्तार

अनुवाद के जरिए ही हम अंतर्राष्ट्रीय सांस्कृतिक संबंध और राजनय को सुनिश्चित कर पाते हैं। हमारे राष्ट्र के हितैषी हमारे पक्ष में कहीं कुछ बोलते हैं, अथवा हमारे विपक्ष में कुछ योजना गढ़ते हैं, तो अनुवाद ही ऐसा साधन है कि हम उससे वाकिफ हो पाते हैं। वैसे तो प्रशासन, पत्राचार, न्यायालय, शिक्षा, धर्म, शोध, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी, फिल्म एवं जन संचार, साहित्य-कला-संस्कृति एवं भाषा शिक्षण, राजनय, प्रतिरक्षा आदि में अनुवाद का महत्त्वपूर्ण योगदान है, पर इस योगदान के साथ-साथ इसकी संवेदनशीलता भी बहुत महत्त्वपूर्ण हो गई है। न केवल राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय संबंधों एवं राजनय को लेकर, बल्कि भारतीय परिप्रेक्ष्य में आंतरिक मामलों के लिए भी संवेदनशीलता बहुत बढ़ गई है। वैचारिक संघर्ष इतने सूक्ष्म हो गए हैं, और वक्तव्यों में बिंब-प्रतीक के प्रयोग इतने प्रभावी हो गए हैं कि छोटे-छोटे कथन की व्यंजना विराट होने लगी है। इस परिस्थिति में इस दायित्वपूर्ण उपक्रम का दायित्व बड़ा जोखिम भरा हो गया है, इसलिए इसमें सावधानी की अपेक्षा भी अधिक की जाने लगी है।

अध्यापन कार्य में अनुवाद का वृहत् योगदान वेदकालीन संस्कृत से लेकर आज तक की विभिन्न भारतीय भाषाओं में, वस्तुतः दूसरे देशों की भाषाओं में भी रहा है। उसकी विधि अन्वय, व्युत्पत्तिमूलक व्याख्या, सरलार्थ, भावानुवाद, संपूर्ण अनुवाद, जो भी हो; ज्ञानार्जन में इसके विभिन्न रूपों का योगदान होता रहा है। बहुभाषिकता अथवा मूल पाठ की अर्थ-जटिलता की विडंबनाओं से उबरने के लिए अनुवाद और उसकी विधियाँ काम आती रही हैं।

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद और फिर भारतीय स्वाधीनता के बाद से दुनिया भर के देशों का जिस तरह आपसी संबंध बना, उसमें अनुवाद की महत्ता बढ़ गई है। अनुवाद प्राचीन काल से अध्यापन कार्य में सहायक होता आ रहा है। मराठी के प्रख्यात उपन्यासकार गंगाधर गाडगिल ने भी अपने ऐतिहासिक उपन्यास प्रारंभ में सबल साक्ष्यों के साथ इस बात ही जानकारी दी है। ब्रिटिश शासन के दौरान समाज के शैक्षिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक विकास के लिए अनुवाद किस तरह अपरिहार्य घटक बन गया था, इसका प्रामाणिक विवरण वहाँ दिया गया है। हमारे गौरव-ग्रंथों का जो अनुवाद विदेशियों ने अपनी भाषा में किया, व्यापक अर्थों में उसका संबंध भी शिक्षा-शास्त्र से ही है। वस्तुतः वे हमारी सांस्कृतिक, धार्मिक और दार्शनिक पृष्ठभूमि की जानकारी हासिल करना चाहते थे। अपनी संपूर्ण शक्ति लगाकर भारतीय नागरिकों के बारे में वे जितनी जानकारी हासिल कर उसके आधार पर उन्हें पूरी तरह विश्वास हो गया था कि ये भारतवासी अपनी विपन्नता में भी संपन्न ही दिखते रहेंगे। तब जाकर उन्होंने तय किया कि इसके सम्मान और मनोबल को ध्वस्त करना जरूरी है, और ऐसा करने के लिए उनकी सांस्कृतिक विरासत की सूक्ष्मताओं को जानना जरूरी है, उनके मनोबल को तोड़ने का सूत्र उनकी संस्कृति और रहन-सहन को जाने बगैर नहीं मिल सकता। उस हाल में उन्होंने हमारे धार्मिक-पौराणिक ग्रंथों का अनुवाद कर हमारी सांस्कृतिक और धार्मिक विरासत पर आघात कर, अपने धर्म और अपनी संस्कृतियों के वर्चस्व की दुहाई दी, और हमारे यहाँ की जनता का मनोबल तोड़ना शुरू किया। गंगाधर गाडगिल के उपन्यास प्रारंभ में इन बातों का जिक्र भी विस्तार से है। ध्यान रखने की बात है कि उपन्यास यथार्थ नहीं होता, पर हर ऐतिहासिक उपन्यास समकालीन और वर्णित देश-काल की चित्तवृत्ति की कथा अवश्य कहता है। समाज में शिक्षा के प्रचार-प्रसार, वाणिज्य-वृत्ति के विकास, सामाजिक उत्थान, प्रगति के प्रति आम नागरिक में वैज्ञानिक दृष्टिकोण, परंपरा के संपोषण और रूढ़ि से मुक्ति, संचार माध्यमों के सीमित संसाधनों से जनजागरण का अलख, स्त्री शिक्षा के प्रति जागरूकता और छूआछूत से छुटकारा... इन तमाम बातों की नींव उस दौर में पड़ी थी और अनुवाद कार्य ने इसमें बड़ी भूमिका निभाई थी।

पर शिक्षा-शास्त्र के क्षेत्र में अनुवाद के महत्त्व का सर्वाधिक उन्नयन औद्योगिक क्रांति के बाद ही दिखता है। विश्व भर का मानचित्र वैज्ञानिक अवदान के कारण सिमट गया। ज्ञान-विज्ञान की कई शाखाओं का विकास हुआ। विषय विशेषज्ञता की आवश्यकता महसूस होने लगी। ज्ञान सम्पदा का आदान-प्रदान वृहत् पैमाने पर होने लगा। परराष्ट्र की प्रतिभाओं का उपयोग शुरू हुआ। ज्ञानार्जन और अर्जित ज्ञान के उपयोग से अर्थोपार्जन की स्वाधीनता बढ़ गई। इन तमाम क्रिया-कलापों के विकास से अनुवाद का फलक बढ़ गया। और, अनुवाद परंपरा की हमारी प्राचीन पद्धति थोड़ी अक्षम दिखने लगी। ज्ञानलोक और चिंतन-पद्धति के विकास के कारण विषय उपस्थान में संवेदनशीलता इतनी बढ़ गई कि अर्थ का अनर्थ होने की संभावना दिखने लगी। प्राचीन समय में अनुवाद के नाम पर जो टीका, व्याख्या, सारांश प्रस्तुत किया जाता था, उसमें मूल पाठ का बहुत कुछ खर्च हो जाता था। नई भाषा में आए हुए पाठ में कुछ आमदनी भी हो जाती थी। वैसे, आज भी अनुवाद क्रिया में इन संभावनाओं से बचा रह पाना मुश्किल है।

इसका सबसे बड़ा कारण होता है दोनों भाषाओं की अपनी सांस्कृतिक पहचान। हर क्षेत्र की भाषा और संस्कृति वहाँ के इतिहास भूगोल और विरासत से संपोषित होती है। उस क्षेत्र की आबोहवा, वहाँ की जलवायु, वहाँ का वातावरण – सब मिलकर ही

वहाँ के मनुष्य का तन और मानस रचा होता है। दो भाषा क्षेत्रों की जटिल जीवन व्यवस्थाओं का तालमेल कराने में बड़े-से-बड़े महारथी कई बार विवश हो जाते हैं। अनुवाद कार्य के दौरान कुछ लोप और आगम (Loss and Gain) की स्थिति ऐसी ही विवशता में उत्पन्न होती है। वस्तुतः यह स्थिति किसी सिद्ध अनुवादक के लिए सबसे बड़ी चुनौती की स्थिति होती है।

पर आज के समय में, जब अनुवाद-कला का विराट महत्त्व प्रमाणित हो चुका है और विश्व फलक पर इसकी आवश्यकता दिख रही है, ज्ञान की शाखा के रूप में इसकी मान्यता बन चुकी है, इस पर कई दिशाओं से सोचने की आवश्यकता हो गई है।

बहुभाषिकता और विभिन्न राष्ट्रों के बीच राजनीतिक, कूटनीतिक, सांस्कृतिक संबंध तथा सीमावर्ती स्वायत्तता से संबंधित राजनय के मद्देनजर अनुवाद की महत्ता अनिवार्य और दायित्वपूर्ण हो गई है। इस रास्ते शिक्षण पद्धति में इसका प्रवेश गंभीरता से हुआ है। शासन-व्यवस्था, संचार-माध्यम, सांस्कृतिक आदान-प्रदान, राष्ट्रनिर्माण, मानवीय सौहार्द, वाणिज्य, उद्योग-धंधे, प्रबंधन-पद्धति, कला-साहित्य-संस्कृति, विचार विनिमय आदि के क्षेत्र में आज अंतर्राष्ट्रीय फलक पर अनुवाद की उपयोगिता इतनी अधिक बढ़ गई है कि इसके बिना ये सारे तंत्र अपंग साबित होने लगे हैं। इधर शिक्षा के क्षेत्र में विशेषज्ञता की माँग इतनी बढ़ गई है कि इन सभी दिशाओं में विभिन्न संस्थानों में उच्चतर शिक्षा दी जाने लगी है। जाहिर है कि अनुवाद के सूक्ष्मतर उपयोग के बिना ये सारे अपूर्ण होंगे। भारत जैसे बहुभाषी, बहुसांस्कृतिक देश में तो इसकी महत्ता और भी विशिष्ट हो गई है।

12.11 सारांश

अनुवाद अध्ययन के क्षेत्र में भारतीय चिंतन परंपरा को रेखांकित किया जाए, तो इसकी लंबी परंपरा का सूत्र हमारे सामने होगा। कीर्ति-स्तंभ स्थापित करने की परंपरा तो भारत में भी रही है। पर राजाओं के यहाँ; बुद्धिजीवियों की मंडली में नहीं, इनके यहाँ तो ज्ञान-चर्चा ही सर्वाधिक महत्त्व का विषय बना रहा। देर तक तो शिक्षा व्यवस्था भी अभ्यास और मौखिक परंपरा से चलती रही। पर आज के समय में अनुवाद की स्थिति बदल गई है। भाषा और संस्कृतियों की विविधता के मद्देनजर विश्व फलक पर कई प्रसंग सामने हैं। विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के साथ मनुष्य की विचार-व्यवस्था में बड़ा परिवर्तन हो गया है। विज्ञान के अवदान और मनुष्य के ज्ञान की परिणतियाँ, विध्वंसक उपलब्धियों के इर्द-गिर्द घूमने में विश्वास करने लगी हैं। राजनय और कूटनीतिक स्थितियाँ बदल गई हैं। अंतर्राष्ट्रीय संबंधों को लेकर वैचारिक संघर्षों को लेकर, विचार-व्यवस्था पर्याप्त व्याख्येय और बहुअर्थी व्यंजना से परिपूर्ण हो गई है। जाहिर है कि अनुवाद जैसे कार्य आज अत्यधिक महत्त्वपूर्ण हो गए हैं।

सन् 1857 के प्रथम स्वाधीनता आंदोलन के भारतीय इतिहास ने ब्रिटिश शासन की नींव हिला दी थी, और उसके ठीक 90 साल बाद भारत को स्वाधीनता मिली। अपनी संघर्षगाथा के रूप में सन् 1857 की हर घटना भारत के शोधकर्ताओं, इतिहासकारों, फिल्म निर्माताओं का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करती है। भारत को पूर्णतः गुलाम तथा अक्षम बनाने के लिए अंग्रेजों ने यहाँ के समाज की सामाजिक-सांस्कृतिक बुनावट को समझने के लिए प्रचुर अनुवाद करवाए और इस प्रकार भारत की निर्मिति को समझते हुए उपनिवेशवाद संबंधी नीतियों का निर्माण किया। इस दृष्टि से भारत की आधुनिककालीन अनुवाद परंपरा मूलतः उपनिवेशकालीन ही है जिसमें हुए अनुवादों का उद्देश्य बेहद दूरगामी एवं घातक था।

अनुवादक अथवा अनुवाद चिंतक के रूप में प्रशिक्षित होने के लिए वैश्विक फलक पर उक्त सारी बातों का ध्यान रखना आवश्यक है। अनुवाद अध्यापन के क्रम में कक्षा-अध्यापन और पाठ्यक्रम का विकास करते हुए आज यह सोचना बहुत आवश्यक हो गया है कि जिन दो भाषाओं के बीच यह संबंध हो रहा है, उनके अपने अंतर्संबंध भी अपनी-अपनी जगह रक्त-शिराओं की तरह फैले हुए हैं। मूल पाठ का बोधन, विश्लेषण करते हुए वाचक/प्रस्तोता की बौद्धिकता और विषय वस्तु के बारे में उसकी समझ से लेकर लक्ष्य-भाषा के भावक की ग्रहण-शक्ति तक की चिंता करना; दोनों पाठों में अंतःसलिल धारा की तरह अलक्ष्य, किंतु विद्यमान संस्कृति और परिवेश का आरोपण करना कितना मुश्किल, और कितना जरूरी है—पाठ्यक्रम विकास के क्रम में इस बात का ध्यान रखना बेहद जरूरी है।

12.12 अभ्यास के लिए प्रश्न

1. उपनिवेशकालीन भारतीय अनुवाद की परंपरा की विश्लेषणात्मक समीक्षा कीजिए।
2. उपनिवेशकालीन भारतीय अनुवाद परंपरा के राष्ट्रवादी स्वरूप का विश्लेषण कीजिए।
3. स्वातंत्र्योत्तरकालीन भारतीय अनुवाद की दिशा-दशा पर अपने विचार व्यक्त कीजिए।
4. अरबी से भारतीय भाषाओं में अनूदित व साहित्यिक पाठों के महत्व की व्याख्या कीजिए।
5. ऐतिहासिक दस्तावेजों के संरक्षण/वर्गीकरण के संदर्भ में अपनी राय दें।
6. ज्ञानफलक के विस्तार में अनुवाद की भूमिका और आधुनिक काल में अनुवाद के फलक विस्तार पर अपनी राय दीजिए।

12.13 उपयोगी पुस्तकें

- नगेंद्र, संपा., *अनुवाद विज्ञान*, हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली, दिल्ली विश्वविद्यालय।
- तिवारी, भोलानाथ, *अनुवाद विज्ञान*, दिल्ली, शब्दकार।
- पालीवाल, रीतारानी, *अनुवाद की सामाजिक भूमिका*, दिल्ली, सचिन प्रकाशन।
- वधान, अमर सिंह, *अनुवाद और संस्कृति*, अहमदाबाद, त्रिवार्ण प्रकाशन।
- सिंहल, ओमप्रकाश, *अनुवाद से संवाद*, अहमदाबाद, अवनी प्रकाशन।
- सैयद अली / *अरैबिक फॉर बिगिनर्स*।
- प्रो. एम. सलीम / *अरैबिक फॉर स्कॉलर्स*।
- अब्दुल सत्तार / *अरबी का मुअल्लिम*।
- अब्दुल मजीद अन-नकवी / *मुअल्लिम-उल इंशा*।
- अब्दुर रहमान अमशतसरी / *किताब-उन-नहवे*।
- अब्दुर रहमान अमशतसरी / *किताब-उस-सर्फ*।
- हमीदुद्दीन फरही / *अस्बाक उन नहवे*।

- Catford, J.C. *Linguistic Theory of Translation*.
- George Steiner, *After Babel: Aspects of Language & Translation*, OUP, New York & London, 1975.
- Newmark, Peter *Approaches to Translation*, 1981.
- Mukharjee, Sujit *Translation as Discovery*, Orient Longman, Hyderabad, 1994.
- Niranjana, Tejaswini *Sitting Translation*, Hyderabad, Orient Longman.
- Bassnett, Susan & Lefevere, Ande *Translation/History/Culture*, Publishers, London, 1990.
- Bassnett, Susan *Translation Studies*, Routledge, London & New York, 1988.
- Dinwaney, Anuradha & Mair, Carol (Ed.), *Between Languages & Culture (Translation and Cross. Culture Texts)*, OUP, Delhi, 1996.
- Spivak, Gayatri Chakraborty, *The Politics of Translation*, Routledge, London & New York, 1992/2000.
- Moore, N. Cornelia and Lower, Lucy, *Translation East and West: A Cross Cultural Approach*, University of Hawaii and East-West Centre.
- Hardwick, Lorna, and St. Jerome, *Translating Words, Translating Culture*, Pub. Co. 2000.